प्रवीण पारीक 'अंशु'

ग़ज़ल

दोस्ती, रिश्ते, वफ़ा कुछ भी नहीं
सिर्फ़ लफ़्ज़ों के सिवा कुछ भी नहीं

मर चुकी संवेदनाएँ जब सभी
आदमी में क्या बचा ? कुछ भी नहीं

ज़िन्दगी हर रोज़ कहती है मुझे
'आज हूँ, कल का पता कुछ भी नहीं'

आप सूरज हैं, चलो माना, मगर
रोशनी दीये की क्या कुछ भी नहीं ?

लोग सूली पर चढ़ाते सत्य को
झूठ की लेकिन, सज़ा कुछ भी नहीं

वो भला, इंसान को समझेगा क्या
जिनकी नज़रों में खुदा, कुछ भी नहीं

हाँ, हुनर की अहमियत भी है बहुत
किंतु मेहनत से बड़ा कुछ भी नहीं

आँसुओं के चंद क़तरे छोड़कर
ज़िन्दगी से क्या मिला, कुछ भी नहीं

झेलता तूफान की हर एक मुश्किल खुद ब खुद
जल रहा है इक अकेला दीप झिलमिल खुद ब खुद

इक अकेले चलने का है हौसला जिनमें नहीं
भीड़ में हो जाते हैं वो लोग शामिल खुद ब खुद

छोड़ दें जब सोचना हम कुछ समय के ही लिए
हो चले आसान यूँ हर एक मुश्किल खुद ब खुद

इतनी शिद्दत से चला था जानिबे मंज़िल, कि अब
देखिए तो, आ गई है चल के मंज़िल खुद ब खुद

मयकदा से लौटकर देखा जो उसने आइना
आ गया था सामने उसका ही क़ातिल खुद ब खुद

थामकर पतवार लड़ना पड़ता है तूफान से
चलके कश्ती तक कहाँ आता है साहिल खुद ब खुद

लोग थे मौज़ूद सारे, फिर भी थी महफ़िल उदास
तेरे आने से हुई रंगीन महफ़िल खुद ब खुद